With Best

Compliments From:

श्रीमती शारदाबेन हरगोवनदास शाह परिवार

आंबावाडी, अहमदाबाद-१५.

NAVRANG
9428 500 401

अप्पहियं कायव्वं

संयमप्राप्ति के लिये शास्त्रीय मार्गदर्शन

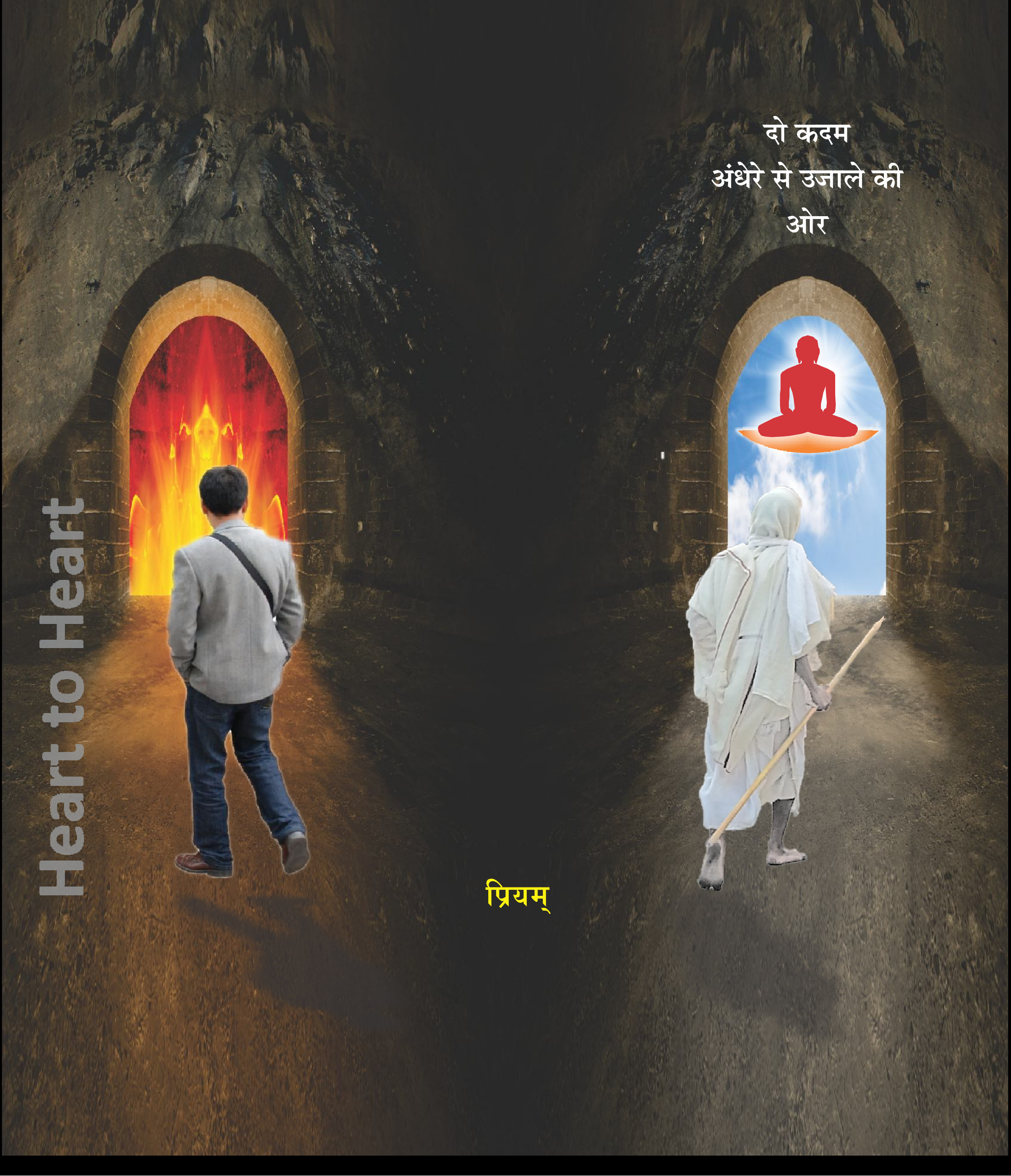

दो कदम
अंधेरे से उजाले की
ओर

Heart to Heart

प्रियम्

Don’t Miss

- સંયમ કબ હી મીલે ?
- ડીલે ઈઝ ડેન્જરસ
- રાતે ખાતા પહેલા
- અમેરિકા જતા પહેલા

हिन्दि बाल साहित्य

- स्टोरी स्टोरी
- ऐन्जोय जैनीझम
- लाइफ स्टाइल
- डायमंड डायरी

Coming Soon

- આ છે સંસાર

प्राप्तिस्थान– बाबुलाल सरेमलजी
सिद्धाचल बंग्लोझ, श्री हीरा जैन सोसायटी, साबरमती,
अहमदाबाद-३८० ००५. मोबाईल - **9426585904**

अप्पहियं कायव्वं

संयमप्राप्ति के लिये शास्त्रीय मार्गदर्शन

Heart to Heart

दो कदम
अंधेरे से
उजाले की
ओर

प्रियम्

प्रकाशक- बाबुलाल सरेमलजी - **ahoshrut.bs@gmail.com**
(इ-मेइल द्वारा निःशुल्क उपलब्ध,
जिज्ञासु स्वयं प्रिन्ट करवाकर प्राप्त कर सकते है ।)

अप्पहियं कायव्वं

संयमप्राप्ति के लिये शास्त्रीय मार्गदर्शन

संयमप्राप्ति का संबंध न उम्र से है, न अवस्था से है, अपि तु वैराग्य से है । जब वैराग्य होता है, तब संसार छूट जाता है । व्यक्ति विवाहित हो या अविवाहित, उसके बेटे हो या ना हो, इससे कोई फर्क नहीं पडता । हा, संयमप्राप्ति के लिये कुछ और योग्यता भी होनी चाहिये, जिसमें खास करके महिलाओं के लिये शास्त्र में दो बातें बतायी है ।

गुव्वी सबालवच्छा

संयमार्थिनी महिला गर्भवती नहीं होनी चाहिये, और उसका बेटा अत्यंत छोटा नहीं होना चाहिये । यतः इन परिस्थिति में बच्चों की पालना एवं जिनशासन की अपभ्राजना की समस्या खडी होती है ।

मार्क करने जैसी चीज़ यह है कि शास्त्रों ने ऐसा नहीं कहा कि विवाहिता नारी दीक्षा के लिये अयोग्य है । भले ही उसने विवाह किया, बंधन को स्वीकारा । लेकिन यह बन्धन तब तक ही है, जब तक वह संसार में है । इस बन्धन का अर्थ यह नहीं है कि वह संयम लेने की अधिकारिणी नहीं है । इस बन्धन का अर्थ तो केवल इतना ही है कि विवाह के बाद उस महिला को अपने पति के अतिरिक्त सभी पुरुषों को अपने पिता, भाई या बेटे के रूप मे ही समज़ना है ।

दायित्व अनेकों के प्रति होते है । परिवार के प्रति... समाज के प्रति... देश के प्रति... शरीर के प्रति... पडोशीओं के प्रति... मित्रों के प्रति... वगैरह वगैरह... जब हमारे पास दो दायित्व एक साथ उपस्थित होते है, जब उन में से एक ही दायित्व को निभाना संभव होता है, तब हम तुलना करते है – कि कौनसा दायित्व अधिक महत्त्वपूर्ण है? इस महत्त्वपूर्णता का आधार भी यही होता है कि हमें किस दायित्व को निभाने से ज्यादा लाभ होगा ?

परिशिष्ट

संयमप्राप्ति की यह सारी बातें – सारी प्रेरणा उन जीवों के लिये है, जो संयम प्राप्ति के लिये योग्य हो । जो अति बाल (८ साल से छोटे) हो, जाये अति वृद्ध (६० या ७० साल से बडे) हो, जिन पर कर्जा हो, जो विकलांग हो, **ऐसी कुल ४८ प्रकार की व्यक्तिओं को श्रीनिशीथ आगमसूत्र में दीक्षा लेने के लिये अयोग्य बताया है । दीक्षा की भावना के अधिकारी सभी हो सकते है । पर दीक्षा की प्राप्ति की योग्यता सब की नहीं हो सकती ।**

यहा लिखे है उसके अलावा भी कई प्रश्न – कई समस्यायें – कई परिस्थितियाँ हो सकती है । हर समस्या का यही समाधान हो, यह तो संभव नहीं है । अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि अपने सिर पर एक संविज्ञ गीतार्थ सद्‌गुरु जरूर रखे । संयमी एवं ज्ञानी ऐसे सद्‌गुरु के पास से अपनी हर समस्या का भी समाधान पाये एवं अपनी योग्यता का भी ज्ञान पाये । हर श्राविका के सिर पर ऐसे कोई साध्वीजी भगवंत होने चाहिये । हर श्रावक के सिर पर ऐसे कोई साधु भगवंत होने चाहिये ।

सद्‌गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पण भाव से ही साधुजीवन या श्रावकजीवन सफल हो सकता है । परम पावन श्री सूत्रकृतांग आगम में कहा है –

गुरुणो छंदाणुवत्तया विरया तिण्ण महोघमाहितं ।

जो सद्‌गुरु के प्रति संपूर्णतया समर्पित है ऐसी विरत आत्मा संसार सागर को तैर जाती है । वास्तव में इस समर्पण भाव में ही सारा का सारा मोक्षमार्ग समा गया है ।

आज यह निर्णय हमारे हाथों में है, कि हमे शीघ्र मुक्ति चाहिये या दीर्घ संसार चाहिये ? निर्णय लेने की यह स्वाधीनता बहुत ही अल्प काल के लिये है। फिर निर्णय हमारे आधीन नही होगा। स्पष्ट कहूँ तो बात यह है –

अभी नहीं तो कभी नहीं ।

अभी भी हम क्याँ सोच रहे है ? परम पावन **श्री उत्तराध्ययन सूत्र में** कहा है –

तिण्णो हु सि अण्णवं महं किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ?
अभितूर पारं गमित्तए समयं गोयम ! मा पमायए ॥

इतने विराट समंदर को तो तूँ तैर गया है

तो अभी भी तूँ किनारे के पास आकर क्यों रुक गया है ? जल्दी कर, तेरा एक ही पुरुषार्थ, और सारा सागर पार। हे गौतम ! इस पुरुषार्थ को करने में तुम एक समय का भी प्रमाद मत करो ।

जो बात भगवान ने गौतमस्वामीजी को कही थी, वही बात भगवान हमें भी कह रहे है। भगवान की बात मानें तो हम न्याल। मोहराजा की बात माने तो हम कंगाल। हमे क्यां बनना है वह हमें ही तय करना है। **Wish you all the best** ......

परम तारक श्री जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ भी कहा हो तो मिच्छामी दुक्कडम्।

– **प्रियम्**

(मागसर कृष्ण ८, २०७३, भीनमाल)

जैसे कि व्यक्ति समाज के दायित्व को निभाने के लिये देश के दायित्व की उपेक्षा करता है, परिवार के दायित्व को निभाने के लिये समाज के दायित्व की उपेक्षा करता है। एवं शरीर के दायित्व को निभाने के लिये परिवार के दायित्व की उपेक्षा करता है। इन सभी वृत्ति–प्रवृत्ति में अधिक महत्त्वपूर्णता की दृष्टि एवं अपने लाभ की दृष्टि अवश्य होती है।

प्रश्न यह खडा होता है कि सब से बडा–सब से अधिक महत्त्वपूर्ण एवं सब से अधिक लाभदायक दायित्व कौन सा है ? वह है अपनी आत्मा का दायित्व । आत्महित की जिम्मेदारी । सांसारिक व्यवहारों में सब से उपर 'शरीर' होता है । उसके लिये व्यक्ति स्वजन–संपत्ति–समाज सभी की उपेक्षा करता है । लेकिन शरीर भी तो नश्वर है । वह रुग्ण होता है, बुढ़ा होता है और एक दिन स्मशान में राख हो जाता है ।

शरीर हम नही है। हम आत्मा है। आत्मा ही हमारा स्वरूप है। अनादिकाल से वह इस संसार में दु:खी हो रही है। यदि आत्मा के दायित्व को हम निभा ले, तो हमेशा हमेशा के लिये हमारी आत्मा सभी कष्टों से- सभी दु:खों से मुक्त हो सकती है, एवं शाश्वत सुख को पा सकती है। बाकी स्वजन–संपत्ति–परिवार–शरीर सब कुछ बिछडनेवाला है यह निश्चित है।

व्यक्ति अत्यंत रुग्ण हो जाती है तब सांसारिक दायित्वों की बात नहीं आती। वह मर जाये तब भी यह बात नहीं आती। बेटा मा–बाप से अलग हो जाये, तब भी यह बात नहीं आती। पति या पत्नी तलाक लेने का प्रयास करे, तब भी यह बात नहीं आती। ऐसे मौकों पर हज़ारों बहाने मिल जाते है। केवल आत्मा के दायित्व को पूरा करने के लिये कोई प्रयत्नशील बने, तब उस पर सब तूट पडते है, एवं तरह तरह के दायित्व की बात करते है। यह वास्तव में अज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

संयमार्थी व्यक्ति को चाहिये कि जो ज्ञान और विवेक उसने खुदने पाया है, उसे परिवार को भी दे एवं परिवार के साथ संयम का स्वीकार करें। यदि परिवार की इतनी समजशक्ति या शरीरशक्ति नहीं है, तो कम से कम अपनी आत्मा को तो संयम की प्राप्ति अवश्य करवाये। यत: जलते हुए घर में रहना

श्रेयस्कर नहीं है । एवं संसार एक जलता हुआ घर है, इसमें कोई भी संशय नहीं है । जलते हुए घर में जैसे ही एक व्यक्ति जगेगी वैसे ही वह अपने परिवार को भी जगायेगी, एवं सब को वहा से बाहर निकालने का प्रयास भी करेगी । पर यदि बहुत प्रयास करने के बाद भी परिवार न ही जगे, या जगने के बावजूद भी बाहर निकलना नहीं चाहे, तो कम से कम उस व्यक्ति को तो शीघ्र से शीघ्र बाहर निकलना ही चाहिये । **परिवार के साथ जल मरने में तो कोई समजदारी नही है ।**

परिवार का दायित्व सांसारिक अवस्था में ही होता है । संयमप्राप्ति एक किसम का सिविल डेथ है, जिस में वह व्यक्ति संसार के लिये मर जाता है । एक आदमी को ऐसी परिस्थिति का निर्माण हुआ था, कि यदि वे मर जाये, तो ही उनके परिवार को उनकी संपत्ति मिल सके । उन्होंने सरदार वल्लभभाई पटेल की राय ली थी । सरदारने उनसे कहा था कि वे संन्यास ले ले । **कानून की दृष्टि से संन्यास लेना एक सिविल डेथ माना गया है ।**

यदि एक दीक्षार्थी पूर्णतया जिनशासन कथित विधि पूर्वक दीक्षित होता है, और पुत्रमोह की बजह से यदि उसके माता-पिता की मृत्यु भी हो जाती है, तो उस दीक्षित को लेश भी प्रायश्चित्त नही आता । यदि आता होता, तो कौन दीक्षा ले सकता ? भावि की किसको क्यां खबर होती है ? इस तरह तो सारा का सारा मोक्ष मार्ग ही बंद हो जायेगा ।

ठीक इसी तरह पति या पत्नी के विधिपूर्वक दीक्षा लेने के बाद यदि शेष पात्र उन्मार्ग का सेवन करता है, तो उसका दोष केवल उसके ही सिर पर है, न कि दीक्षित के सिर पर ।

हा, दीक्षार्थी का प्रयास तो सपरिवार दीक्षा लेने का ही होना चाहिये । पर यदि दुसरा पात्र सज्ज ही न हो, तो उसके भावि संभवित दोष की बजह से स्वयं संसार में बैठे रहना वह लेश भी उचित नहीं है । **इस तरह तो नाना प्रकार के कारण - जो सभी के सांसारिक जीवन में होते ही है, उससे कोई दीक्षा ही नही ले पायेगा, एवं संपूर्ण मोक्षमार्ग का ही उच्छेद हो जायेगा ।**

किन्तु ऐसा तो नहीं है, अनादि काल से मोक्षमार्ग अविच्छिन्न रूप से

रहती है । **एक सच्ची इच्छा हज़ारों प्रतिकूल संयोगों को भारी पड जाती है । एक सच्ची इच्छा पूरे के पूरे वातावरण को अनुकूल बना देने के लिये समर्थ होती है ।** संयम की अभिलाषा में भी चारित्र मोहनीय को चूर चूर कर देने का सामर्थ्य होता है, तो संयमप्राप्ति के पुरुषार्थ की तो क्याँ बात करनी ? यह एक ऐसी धारा है, जिसका प्रत्येक बिन्दु चारित्र मोहनीय कर्म के समंदर को पी जाने की क्षमता रखता है । आवश्यकता है ऐसी पुरुषार्थधारा की । उसके लिये भी सच्ची इच्छा की ।

दीक्षार्थी किसे कहते है ? **दीक्षाया अर्थी दीक्षार्थी** । जिसे दीक्षा की बेहद जरुरत हो उसे दीक्षार्थी कहते है । **लगा तो तीर नहीं तो तुक्का, उसे दीक्षार्थी नहीं कहते है । दीक्षा जिसके लिये जीवन हो, ओर संसार जिसके लिये मौत हो, उसे दीक्षार्थी कहते है । एक प्यासा - पानी के लिये तरस रहा - पानी के बिना मर रहा आदमी जिस तरह पानी को चाहे उसी तरह जो संयम को चाहे वह दीक्षार्थी है ।** दीक्षार्थी की दीक्षाप्राप्ति के प्रयास करने में क्यां कमी हो सकती है ? कहा भी है -

मरता क्यां नहीं करता ?

वह सब कुछ करेगा । हर उपाय को अजमायेगा । जिनाज्ञानुसार स्टेप बाय स्टेप हर विधि का पालन करेगा । आखिर में अंतिम उपाय से भी संयम को प्राप्त करके रहेगा । **पंचसूत्र** में कहा है -

धीरा एअदंसिणो आसण्णभव्वा

जो धीर आत्मा है, वह कभी भी मोहाधीन नहीं होगी । वह कभी भी वर्तमान स्थिति को नहीं देखेगी पर फल को देखेगी - परिणाम को देखेगी । और जिनाज्ञा के अनुसार विधिपूर्वक संयम की प्राप्ति करेगी । ऐसी आत्मा की मुक्ति समीप में होती है । **दुसरे शब्दों में - जिस आत्मा की मुक्ति समीप में होती है, वह आत्मा ही ऐसा पुरुषार्थ कर सकती है । जिन्हें अभी भी बहुत भवभ्रमण करना बाकी होता है, वह आत्मा प्रमाद वश होकर मोह के कीचड में पडी रहती है ।**

आराधना पाकर चरम केवली श्रीजम्बूस्वामी उत्कृष्ट सुखमय मोक्ष को प्राप्त कर गये, उसके मूल में थी संयमप्राप्ति के लिये पूर्वभव में की हुयी प्रबल साधना... प्रबल पुरुषार्थ ।

तो वास्तव में तो यह अपवाद भी अपवाद नहीं है । **फिर से बात तो यही आ जाती है कि वैराग्य को बाँधना संभवित नही है, वैराग्य अपना रास्ता निकाल ही लेता है । प्राय: हमारे ऐसे कोई निकाचित कर्म होते नहीं, केवल पुरुषार्थ में कमी होती है ।** यदि हम सोचते है कि हम कुछ नही कर सकते, तो वास्तव में हम कुछ नही कर सकेंगे । यदि हम सोचते है कि हम बहुत कुछ कर सकते है, तो वास्तव में हम बहुत कुछ कर सकते है ।

Whether you think you can do
or you can’t
in both you are right.
you can do what you think you can do.
you can’t do what you think you can’t do.

संयमप्राप्ति अविवाहित के लिये आसान होती है । विवाहित के लिये मुश्किल होती है । बेटा-बेटी वालों के लिये अशक्य होती है । ऐसा हम मानते है । वास्तव में मुश्किल हम उसे कहते है, जिसमें सामान्य कार्य से थोडा ओर समय लगता है । और अशक्य हम उसे कहते है, जिस में उससे भी थोडा ओर समय लगता है ।

तात्पर्य यह है कि मुश्किल या अशक्य जैसी कोई चीज़ ही नही होती । हमारी भावना की दुर्बलता ही प्राय: कार्य को मुश्किल या अशक्य बना देती है। **संयमप्राप्ति में बाहर जितनी भी रुकावट है, वह सभी निमित्तमात्र है । मूल रुकावट तो केवल एक ही है, हमारा चारित्र मोहनीय कर्म ।** जो हमने ही बाँधा है । जिसे हम ही काट सकते है । सम्यग् अभिलाषा एवं सम्यक् पुरुषार्थ- इनके लिये न कुछ मुश्किल है, न कुछ अशक्य है ।

दीक्षा हो या मोक्ष हो,वह संयोग के अधीन नहीं है । हमारी सच्ची इच्छा के अधीन है । सच्ची इच्छा हंमेशा सक्रिय-**Active** होती है । वह सफल होकर ही

चल रहा है एवं अनंत काल तक चलता रहेगा । सैकड़ों विघ्नों की उपस्थिति में भी दीक्षार्थी दीक्षा लेते रहे है और लेते रहेंगे । **यदि सभी के बारे में सोचा जाये, तो संयम का तो क्यां ? संसार का भी कोई काम नही हो सकेगा । सभी को खुश करना संभव ही नही है । हृदयप्रदीप** में कहा है-

नानापथे सर्वजनः प्रवृत्तः, को लोकमाराधयितुं समर्थः ? ॥

सभी जन अपने अपने मार्ग में प्रवृत्त होते है । सभी को खुश करने का सामर्थ्य भला किस में हो सकता है ? ।

योगसार में प्राचीन परमर्षि कहते है -

तोषणीयो जगन्नाथः, तोषणीयश्च सद्गुरुः ।
तोषणीयस्तथा स्वात्मा, किमन्यैर्बत तोषितैः ॥

खुश करना है तो भगवान को खुश करो, खुश करना है तो सद्गुरु को खुश करो । खुश करना है तो आत्महित के आचरण से आपनी आत्मा को खुश करो । दुसरों को खुश करके हमें क्यां फायदा होनेवाला है ?

महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजा कहते है -

मल्लिनाथ तुज रीझ जन रीझे न हुई री ।
दोय रीझणनो उपाय साहमु काई न जुई री ॥

हे मल्लिनाथ भगवान! लोग को खुश करने से आप खुश नहीं होनेवाले । ऐसा तो कोई उपाय ही नहीं, जिससे लोगों को भी खुश किया जा सके एवं आपको भी खुश किया जा सके ।

शांतिनाथजी, कुंथुनाथजी, अरनाथजी, भरत चक्रवर्ती यह सब मोक्ष में गये थे । जब कि इन सभी की जो जो पट्टरानी थी वह मरकर छठवी नर्क में गयी थी । तो क्यां उन्होंने संयम स्वीकार कर पाप किया? क्यां पट्टरानी के दोष उनके सिर पर आयेंगे ? बिल्कुल नहीं । हर जीव अपनी भवितव्यादि से नियत पाप और नियत दुर्गति का भागी होता है, किसी के दोष से किसी को पाप लगता हो, तो कर्म के कर्ता एवं भोक्ता की सारी की सारी व्यवस्था ही लुप्त हो जायेगी एवं धर्म करने का कोई अर्थ ही नही रहेगा ।

पाप करने से भी कोई नुकशान नही होगा । किन्तु ऐसा तो नहीं है ।

पट्टरानी का ख्याल करके वे यदि संसार में ही बैठे रहते, तो पट्टरानी की नर्क तो नहीं मिटती, अपि तु उनकी खुद की भी नर्क निश्चित हो जाती । वास्तव में किसी की चिंता में आत्महित से भ्रष्ट होना यही सब से बडी मूर्खता है । संसार में घर-दुकान चलाने में कोइ ऐसी मूर्खता नहीं करता । सारी दुनिया का जो होना हो सो हो, मेरा घर-दुकान अच्छी चलनी चाहिये, यही मानसिकता सबकी होती है । यदि सबकी सोचने जाये, तो घर-दुकान कुछ चलेगा ही नहीं । तो फिर अनंतकाल के बाद अति दुर्लभ आत्महित सामग्री को पाकर दुसरों की सोच में इस अवसर को गवा देना, इसमें कौन सी बुद्धिमत्ता है ? **जिस सिद्धान्त को लेकर हम समग्र जीवनव्यवहार को चलाते है, उसी सिद्धान्त की आत्महित के सम्बन्ध में उपेक्षा करनी, और इतने उपर आकर भी, ईतना सब कुछ जानकर भी आत्महित से वंचित हो जाना, यह एक किसम की आत्महत्या ही नही है, तो और क्यां है ?**

यदि चक्रवर्ती ६४००० रानीयों की सोचने जाये, 'उनका क्यां होगा ?' - ऐसी चिन्ता करने जाये, तो वे कभी भी दीक्षा नहीं ले सकते । रानी की सोच में अपना बिगाडना उसमें जिनशासन की सम्मति नहीं है । जिनशासन कहता है -

अप्पहियं कायव्वं, जई सक्का परहियं वि कायव्वं ।
अप्पहियं - परहियाणं, अप्पहियं चेव कायव्वं - महानिशीथसूत्रम् ॥

आत्महित करना चाहिये । यदि संभव हो तो परहित भी करना चाहिये । आत्महित और परहित - इन दौनों में से एक का ही संभव हो, तो आत्महित ही करना चाहिये ।

एकाग्रता से देखे इस बात को । दुसरों का हित करने के लिये भी आत्महित की उपेक्षा करना - यह जिनशासन को मान्य नहीं है । तो फिर जिससे परहित भी नहीं है, उसके लिये तो आत्महित की उपेक्षा कैसे मान्य हो सकती है ?

दीक्षार्थी यदि मोहत्याग करके परम वैराग्य से संयमपथ पर चले, तो

पंथे । जिसका संक्षिप्त हिंदी अनुवाद है - श्रामण्य नवनीत । (प्राप्तिस्थान- शा. देवचंदजी छगनलालजी, सदर बजार, भीनमाल-३४३०२९, राजस्थान । संपादक- मुनि जयानंद विजयजी) इस पुस्तक में तर्क एवं दृष्टांत के साथ प्रमाणित किया गया है कि सभी विधि करने के बाद जब कोई चारा ही ना रहे, तब बिना अनुमति भी संयमग्रहण करने में कोई दोष नहीं है, अपि तु लाभ ही है । **पंचसूत्र (तृतीय सूत्र)** तो यहा तक कहता है कि -

एस चाए अचाए, तत्तभावणाओ
अचाए चेव चाए, मिच्छाभावणाओ

यह त्याग भी तात्त्विक दृष्टि से अत्याग है, यतः उसमें सही दृष्टि है । अत्याग ही वास्तव में त्याग है, यतः उसमें मिथ्यादृष्टि है ।

संयम की सच्ची भावना वह है, जिसे दुनिया की कोई भी शक्ति रोक न पाये । जिसे बांधा जा सकता है, वह राग है । वैराग्य को कभी भी बांधा नहीं जा सकता । पानी कही से भी अपना रास्ता निकाल लेता है । पानी को रोकना मुमकिन नहीं है । ठीक उसी तरह वैराग्य भी संयमप्राप्ति का रास्ता निकाल ही लेता है । जो रुक जाये वो वैराग्य नहीं ।

हा, अपवाद तो इसमें भी हो सकता है । जैसे की आजीवन बेले के पारणे आयंबिल करने पर भी, प्रबल वैराग्य होने पर भी, संयमप्राप्ति की अदम्य इच्छा होने पर भी शिवकुमार को संयम नहीं मिला था । **पर ऐसे अपवाद अत्यंत कम होते है । ज्यादातर लोग तो अपने मोह का दोष निकाचित कर्मों के सिर पर डालकर अपने आप को कल्याणवंचित करते होते है ।** शिवकुमार ने किस तरह इतना कठिन कर्म बांधा था, उसका भी वर्णन शास्त्र में है । एवं संयमप्राप्ति के लिये उन्होंने जो कडा पुरुषार्थ किया, वह भी किस तरह सफल रहा वह भी बात शास्त्र में आती है । शिवकुमार ही आगामी भव में जम्बूस्वामी बनते है । पूर्वभव के कडे पुरुषार्थ से उनका रास्ता ईतना सरल हो जाता है कि शादी के दुसरे ही दिन उन्हें संयम की प्राप्ति हो जाती है । वह भी नवविवाहिता पत्नीओं के साथ । अपने और उनके मातापिता के साथ । चोरी करने आये हुए पांच सो चोरों के साथ । **उत्कृष्ट संयम, उत्कृष्ट ज्ञान एवं उत्कृष्ट**

जिसमें सर्व प्रथम संपूर्ण परिवार को प्रतिबोध करने का प्रयास करना चाहिये। यह संभव न हो तो परिवार की-विशेषत: परिवारनायक की सम्मति पाने का प्रयास करना चाहिये। स्वयं ही परिवार के नायक होने पर यदि परिवार घरनिर्वाह की चिंता से संयम में रुकावट कर रहा हो, तो उनके लिये निर्वाह का स्थायी साधन बनाकर संयम लेना चाहिये। यदि वे मोहवश संयम की अनुज्ञा न दे रहे हो, तो भीतर में सरल रहकर बाहरी छल से भी उन्हें सम्मति देने के लिये सज्ज करना चाहिये। जैसे की अशुभ स्वप्न का प्रतिपादन, ज्योतिषी/वैद्य/डोक्टर द्वारा अपनी आयु अत्यंत अल्प है, ऐसा प्रमाणित करवाना, संसार में अत्यंत शारीरिक वेदना का प्रदर्शन करना, इत्यादि। **पंचसूत्र** में कहा है -

अण्णहा अणुवहे चेव उवहिजुत्ते सिया
धम्माराहणं खु हियं सव्वसत्ताणं

यदि सरलता से संयम की अनुमति न मिले, तो भीतर में सरलता के साथ ही बाहर छल करे, धर्म की आराधना हो, उसी में सभी जीवों का हित है, अन्यथा सभी का अहित निश्चित है।

छलमय संसार में डुबने के बजाय संयमप्राप्ति के लिये अल्प छल करना लाखों गुना अच्छा है। वास्तव में तो वह छल ही नहीं है। यत: उसका परिणाम अच्छा है। ज्ञानीओं कहते है -

अमायी अपि भावेन, मायी अपि भवेत् क्वचित्।
पश्येत् स्वपरयोर्यत्र, सानुबन्धं हितोदयम्॥

भाव से सरल भी कभी व्यवहार से छल करना चाहिये, जहा स्व ओर पर का परंपरा से हित संभव हो।

तथापि यदि अनुमति नहीं ही मिले, तो बिना अनुमति भी संयम का ग्रहण करना ही चाहिये। **जो व्यक्ति हमारी दुर्गति का और भवभ्रमण का दायित्व नही ले सकते, उनके लिये संसार में रह जाना यह अपने आप को धोखा देने जैसा है।** पंचसूत्र में संयमग्रहण- विधि में अंतिम रास्ता बिना अनुमति भी दीक्षा लेना बताया है। गुरुदेव की एक पुस्तक है - **उच्च प्रकाशना**

संभव है कि परिवार के अन्य सदस्यों को भी संयम की अभिरुचि हो, कम से कम उनका धार्मिक स्तर उपर आये ऐसी तो संभावना है ही। **दीक्षार्थी यदि स्वयं मोह के वश हो जाये, तो उसमें तो उसका भी अहित ही है, और परिवार का भी अहित ही है।** एसा भी हो सकता है, कि क्लिष्ट कर्मो के उदय से परिवार अधर्मी हो। दीक्षार्थी की दीक्षा के बाद भी वह अधर्मी ही रहे या ज्यादा अधर्म करे। किन्तु यह कोई दीक्षा न लेने का हेतु नहीं है। **पंचसूत्र** में कहा है -

सव्वे जीवा पुढो पुढो, ममत्तं बंधकारणं।

सभी जीव अलग अलग है। सब के अपने अपने रास्ते, सबकी अपनी अपनी भवितव्यता है। इन जीवों पर ममत्व करने से अपनी ही आत्मा कर्मो के बंधन पाती है, और ज्यादा दु:खी होती है। उन कर्मो के उदय से दु:खी होती हुई अपनी आत्मा को वे जीव बचानेवाले नहीं है।

संसार से विरक्त होकर एक व्यक्तिने दीक्षा ली। उसकी पत्नी दुराचार से गर्भवती हुई थी। बिचरण करते करते वे महात्मा अपने सांसारिक गाँव में आये। योगानुयोग अपने ही सांसारिक घर में गोचरी लेने गये। घर में वह पत्नी अकेली थी। उसने सोचा की यदि मेरे पति संयम छोडकर वापस संसार में आ जाये, तो मुज पर दुराचार का कलंक नहीं आयेगा। महात्मा को अंदर रसोईघर तक बुलाकर उसने मुख्य द्वार बंद कर दिया। महात्मा को लुभाने की हर कोशिश कर के देखी। फिर भी महात्मा निश्चल रहे। महात्माने उसे बहुत समज़ाया कि "विषयसेवन नर्क का रास्ता है। व्रतभंग महापाप है। मुजे संसार के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं है।" तथापि वो नही समज़ी। उसने महात्मा को धमकी दी कि यदि उन्होंने उसकी बात नहीं मानी, तो वह अपने कपडे फाड़कर शोर मचाकर लोगों को इकट्ठा करेगी और उन पर झूठा आरोप लगायेगी।

महात्माने सोचा की बदनामी का तो मुजे़ कोई डर नहीं है, परंतु यह बदनामी केवल मेरी ही नहीं, जिनशासन की भी होगी। यह तो में हरगिज़ नहीं होने दूँगा। क्याँ किया जाये ?

सोचकर महात्माने उसे कहा कि मुजे थोडी देर के लिये उपर के

कमरे में जाने दे । वहाँ मैं व्रतों का त्याग कर दूँ । फिर जैसी तुम्हारी मरजी । पत्नी खुश हो गयी, महात्मा को उपर जाने दिया । बहुत देर हुई, पर वे वापस नहीं लौटे । तब पत्नी खुद उपर गयी । दरवाजा अंदर से बंद था । बहुत खिटखिटाया । पर कोई प्रतिभाव नहीं मिला । खिडकी को धक्का देने पर खिडकी खुल गई । अंदर का दृश्य देखकर पत्नी चौंक उठी । छत के सलाखे के बल पर महात्मा का मृतदेह लटक रहा था । **उन्होंने व्रतरक्षा भी हो सके एवं जिनशासन की हीलना भी न हो इसलिये फांसी लेकर अपने आपका बलिदान दे दिया था ।**

ऐसी ही दुसरी भी घटना शास्त्र में आती है । जिसमें एक महात्मा विहारमार्ग में पत्नी के उपसर्ग से गृध्रपृष्ठ मरण का स्वीकार कर लेते है । जिस में वे अन्य मुर्दों के साथ जीवितरूप में सो जाते है । गीधों का भोजन बनते हुए अपने शरीर की पूर्ण उपेक्षा करते है, पर संयम को सुरक्षित कर देते है ।

इन दोनों महात्माओ को वैमानिक देवलोक की प्राप्ति हई । इस जन्म के बाद केवल एक ही जन्म लेकर उन्हें शाश्वत सुखमय मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी ।

यह दोनों घटनायें शास्त्र में आज भी मोजूद है । अनेक दृष्टिकोनों से इन घटनाओं को देखा जा सकता है । शास्त्रों के अनेक प्रतिपादन भी इन घटनाओं से जुडे हुए है । हमें यह देखना है, कि दोनों घटनाओं में एक बात सामान्य थी – कि महात्माओं की पत्नीने दीक्षा नहीं ली थी । पत्नी को संसार में छोड़कर उन्होंने दीक्षा ली थी । और दोनो की पत्नीओंने उन्मार्ग का सेवन किया था । तथापि उन महात्माओं को कोई दोष नहीं लगा था । उनकी मोक्षयात्रा में कोई रुकावट नहीं आयी थी । अपने संयम के एवं व्रतपालन की दृढता के प्रभाव से उन्होंने अपने मोक्ष को अत्यंत समीप में ला दिया था । **पत्नीओं की दशा के लिये, वे खुद ही जिम्मेदार थी । पति मर जाये तब भी उन्मार्ग में जाने वाली नारीयां होती है । पति जीवित हो एवं संसार में ही हो, तब भी उन्मार्गगामिनी महिलायें होती है । तो फिर संयमजीवन पर ही इसका दोषारोपण करना उचित नहीं है ।**

स्वकेन्द्रित स्थिति में ही आत्महित का संभव है । आखिर कोई कब तक दुसरों के पीछे लगे रहेगा ? अंत में मृत्यु के बाद तो वह संभव है ही नहीं, सभी बिछडनेवाले है । अपने अपने रास्ते पर जानेवाले है । अपने अपने कर्म भोगनेवाले है । आचारांग सूत्र कहता है –

तुमं पि णालं तेसिं ताणाए सरणाए वा
ते पि णालं तव ताणाए सरणाए वा

न तुम उन्हें बचा सकते हो, न वे तुम्हें बचा सकते है । न तुम उनकी शरण बन सकते हो, न वे तुम्हारी शरण बन सकते है ।

हमें चाहिये कि हम सबका कल्याण करे, पर जब वह संभव ही नहीं हो, तब हमारी दृष्टि केवल हमारी आत्मा पर ही होनी चाहिये । यदि हमारी दृष्टि आत्मा के उपर से हट गयी, तो समज़ लो की हम आत्महित से भ्रष्ट हो गये । हमने हमारे समस्त भवचक्र की सबसे बड़ी भूल कर दी । शास्त्र कहते है –

उत्तमा तत्त्वचिन्ता स्यान्, मध्यमं शास्त्रचिन्तनम् ।
अधमा कामचिन्ता च, परचिन्ताऽधमाधमा ॥

उत्तम है तत्त्वचिंतन । मध्यम है तत्त्वकी प्राप्ति करानेवाले शास्त्र का चिंतन । कामभोग का चिंतन अधम है । और दुसरों के बारे में सोचना यह अधम से भी अधम है ।

गुरुदेव की एक पुस्तक है – **आत्मचिंतन** । इस गुजराती पुस्तक में केवल इस एक ही श्लोक की विस्तृत व्याख्या की गयी है । एवं यह सारी बात दिमाग में फीट हो जाये ऐसी विस्तृत कथा भी दी गयी है ।

तो बात यह है – **परचिन्ताऽधमाधमा** । आत्महित के अवसर पर दुसरों की चिन्ता करना यह बुरे से भी बुरी चीज़ है । यह आत्मवंचना है । अपने आप को संसार के कूए में डालने की कुचेष्टा है । आत्मार्थी व्यक्ति को कभी भी ऐसा नहीं करना चाहिये ।

हा, संयमार्थी को जिनाज्ञा के अनुसार उचित विधि जरूर करनी चाहिये ।